International Journal of Jyotish Research: 2025; 10(2): 179-184

International Journal of Jyotish Research
(वेदचक्षु)

ISSN: 2456-4427
Impact Factor: RJIF: 5.64
Jyotish 2025; 10(2): 179-184
© 2024 Jyotish
www.jyotishajournal.com
Received: 01-09-2025
Accepted: 05-10-2025

डॉ. सोमकृष्ण
सहायकाचार्य, हिन्दू अध्ययन केन्द्र,
केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सप्तसिन्धु परिसर,
देहरा, कांगडा, हिमाचल प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ. सोमकृष्ण
सहायकाचार्य, हिन्दू अध्ययन केन्द्र,
केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सप्तसिन्धु परिसर,
देहरा, कांगडा, हिमाचल प्रदेश, भारत

यज्ञ पात्र निर्माण में प्रयुक्त वनौषधियों का वैज्ञानिक महत्त्व

सोमकृष्ण

DOI: https://www.doi.org/10.22271/24564427.2025.v10.i2c.288

यज्ञ पात्र (जैसे स्रुवा, प्रोक्षणी, प्रणीता, स्रुची, उशकट, आदि) वे विशिष्ट बर्तन और उपकरण हैं जो वैदिक श्रौत यज्ञों में प्रयोग होते हैं, जिनकी भूमिका सामग्री को रखने, हवन करने, सोमरस निकालने, और अनुष्ठान के विभिन्न चरणों (जैसे जल छिड़कना, घी डालना, सोमपान) को सही ढंग से संपन्न करने की होती है, और ये पात्र निश्चित लकड़ियों काष्ठों से, विशिष्ट आकार और माप के बनाए जाते हैं, जो यज्ञ की सफलता और वैदिक विधि के पालन के लिए अनिवार्य हैं।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वांगिरस, की एक हज़ार से भी अधिक शाखाएँ थी कालान्तर में बहुत सारी शाखायों लुप्तप्राय भी हो चुकी हैं परन्तु जो भी उपलब्ध है वे मुख्यतः यज्ञ के उद्देश्य से समर्पित हैं। वेदों के तीन भाग हैं: कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड।

वेद मन्त्रों की संख्या एक लाख और महाभारत की श्लोक संख्या एक लाख है। इसका महत्त्व इसी बात से स्पष्ट होता है कि एक लाख मंत्रों वाले वैदिक भाग के अस्सी प्रतिशत मंत्र यज्ञ और हवन के अनुष्ठानों में समाहित हैं। यज्ञ लोक कल्याण के लिए किए जाते हैं। जैसा कि भगवद्गीता में भी कहा गया है –

> यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।[1]
> न हि यज्ञसमं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
> तस्माद्यष्टव्यमित्याहुः पुरुषेणानसूयता।।[2]

तीनों लोकों में यज्ञ के समान कुछ भी नहीं है। इसलिए कहा गया है कि मनुष्य को ईर्ष्या रहित होकर यज्ञ करना चाहिए। महाभारत के शान्ति पर्व गीता में उल्लेख है –

> सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
> अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।
> देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
> परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।[3]
> अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्यन्यादन्नसम्भवः।
> यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।[4]

यज्ञों द्वारा जीवों की रचना करने के बाद, सृष्टिकर्ता प्रजापति ने पूर्वकाल में कहा था। इससे तुम्हें संतान प्राप्त होगी और यह तुम्हारी कामनाओं का पूर्ण करने वाला होगा। देवता जब यज्ञ से सन्तुष्ट होंगे तो उससे देवता मनुष्यों का कल्याण करेंगे। एक-दूसरे के प्रति भावना रखने से तुम्हें परम कल्याण की प्राप्ति होगी। अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं और वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है। यज्ञ से वर्षा होती है और यज्ञ ही कर्म का मूल है। मत्स्य पुराण में भी कहा है –

> देवानां द्रव्यहविषां ऋक्सामयजुषां तथा।
> ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगो यज्ञ उच्यते।।[5]

---
[1] श्रीमद्भगवद्गीता – 18.5
[2] श्रीमद्भगवद्गीता – 18.15
[3] श्रीमद्भगवद्गीता – 3.10,11
[4] श्रीमद्भगवद्गीता – 3.14
[5] मत्स्य पुराण – 144.44

ऋग्, साम और यजुर्वेद देवताओं की आहुति हैं। पुरोहितों और दान के संयोजन को यज्ञ कहते हैं।
यह यज्ञ का वर्णित स्वरूप है। श्रुत और स्मार्त के भेद से यज्ञ दो प्रकार के होते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में: यह पाँच प्रकार का यज्ञ है। अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमासी, चातुर्मास्य, पशु और सोम।
गौतमधर्मसूत्रकार ने पाक-यज्ञ, हवीय यज्ञ और सोमयज्ञ के भेद से तीन मुख्य यज्ञों का प्रदर्शन करके उनके अवान्तर 21 प्रकार के यज्ञों का उल्लेख किया है – यथा - औपासना होम, वैश्वदेव पार्वण, अष्टक, मासिक श्राद्ध श्रवणा, शलगव इस प्रकार सात पाक संस्था। अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढपशुबन्ध, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञ इत्यादि दर्विहोम के रूप में सात हविर्यज्ञ संस्था।
इसके बाद अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम यह सात सोमसंस्था हैं।
इस प्रकार ऊपर चर्चित यज्ञों में पाक यज्ञ स्मार्त यज्ञ हैं, शेष श्रौतयज्ञ हैं क्योंकि ये श्रुति अर्थात् वेद प्रतिपादित है। इनके अतिरिक्त और भी यज्ञ गृह्यसूत्रेषु में वर्णित हैं। श्रौत स्मार्त यज्ञों के अनुष्ठानों के कारण ही भारत भूमि को यज्ञीय भूमि के रूप में विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। परन्तु बिडम्बना का विषय यह कि वर्तमान काल में श्रौत यज्ञों का अनुष्ठान अत्यल्प हो गया है। अतः सभी वैदिक धर्मावलम्बियों को श्रुति प्रोक्त यज्ञकर्मों का अनुष्ठान में भी तत्पर होना चाहिए।
श्रौत स्मार्त भेद से जो यज्ञ के दो भाग दर्शाये हैं वह यज्ञ भी पञ्च प्रकार का है – अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, चातुर्मास्य, पशु, सोम इस प्रकार प्रधान रूप से पांच श्रौत यज्ञ ऐतरेय ब्राह्मण में कहे गयें हैं। यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म यह शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है।
ऊपरोक्त चर्चा में वर्णित यज्ञों का अनुष्ठान यज्ञ पात्रों के विना सम्भव नहीं है, किसी भी कार्य के सम्पादन के लिए करण अर्थात् माध्यम का होना अत्यावश्यक होता है इसीलिए इन यज्ञों के अनुष्ठान के लिए पात्रनिर्माण भी किया जाता है इस पात्रनिर्माण का आधार भी अत्यन्त वैज्ञानिक है।
जिस प्रकार कहा गया है कि विशेष काल एवं स्थिति में पात्र निर्माण हो, यज्ञ पात्र निर्माण की विधि का भी ज्ञान हो तथा किन किन पात्रों की आवश्यकता विशेष यज्ञों में होती है उन यज्ञ पात्रों का नामकरण कैसे किया गया है तथा क्या क्या नाम हैं जिस काष्ठ से उनका निर्माण का विधान है यह सब जानना भी आवश्यक है इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत शोध पत्र में विचार किया गया है।
यज्ञपात्र को साधारणतः आजीवन धारण करना है। "आधान प्रभृति यावज्जीवं पात्राणि धार्यन्ते तेषां प्रतितन्त्रं संस्कारः"[6]। उनको हर एक प्रयोग में आसादन, प्रोक्षण, संमार्जनादि संस्कार करना चाहिये। (पतिपत्नियों) यजमान दम्पती में जो व्यक्ति पहले दिवंगत होता है उसके साथ आजीवन धारण करने योग्य यज्ञपात्रों को दहन करना चाहिए। प्रवर्ग्य आदि कर्मों में उपयुक्त पात्रों को प्रवर्ग्य
का उद्वासन करने समय में उत्तरवेदि में रखकर उन पर अग्नि का प्रणयन करते हैं। सोमनामक याग में उपयुक्त सोमलिप्तपात्र (epithet of all utensils employed atहैं। the Soma Sacrifice) अवभृथ नामक इष्टि के समय में अवभृथ के जल में छोडते हैं। सोमयाग के अन्त में मृण्मय पात्र (मिट्टी से बने पात्र) को फुटवाते हैं। दर्भमयों में कुछ आजीवन धारण करने योग्य हैं। और कुछ प्रयोग के अन्त में छोडनेवाले श्रौतपात्र के निर्माण में जिन पेडों की लकडियों का इस्तेमाल करना है, यह भी बताया गया है। दारु (लकडी)-मृण्मय-दर्भमय चीजों के रूप और परिमाण भी निर्देश किया गया है। यथा "खादिरः स्रुवः पर्णमयीजुहूः आश्वत्थ्युपभृत् - वैकङ्कत्ती ध्रुवा"[7] सामान्य से विधान करके फिर "एतेषां वा वृक्षाणां एकस्य खुचः कारयेत्"[8] इस सूत्र से विकल्प बताये। इनके प्रमाण के बारे में भी बाहुमात्र्योरत्नि मात्र्यो वा अग्राग्राः त्वक्तोबिलाः हंसमुख्यः"[9] इत्यादि सूत्रों से कई विकल्प बताये। साधारण रूप से अरत्निप्रमाण बनाते हैं। "स्फ्यः शम्याप्राशित्रमिति खादिराणि"[10] इत्यादि सूत्रों के आधार पर यथाशक्ति श्रौतपात्रों का स्वरूप तथा उनका विनियोग ससूत्र दिखाते हैं।

[6] आप. श्रौ. 24-1-28,29
[7] आप. श्रौ. 1-15-10.
[8] आप.श्रौ. 1-15-11.
[9] आप.श्रौ. 1-15-12
[10] आप. श्रौ. 1-15-13

आन्ध्रप्रदेश में प्रायशः आपस्तम्बसूत्रानुयायी होने के कारण उसी सूत्र को आधार करके बताया जाता है।
आसादन = विहितदेश में विहित वस्तु का समन्त्रक /अमन्त्रक रखना।
प्रोक्षण = विहितद्रव्य के ऊपर उत्तान हस्त से जल फेंकना।
संमार्जन = विहितद्रव्य को विहित द्रव्य से (प्रायः दर्भ होते हैं) मार्जन करने को संमार्जन कहते हैं।
प्रणयन = एक अग्नि से एकदेश को स्थानान्तर मे लेके स्थापन करना अग्निप्रणयन जल को दूसरे स्थान में रखना अपां प्रणयन कहते है।
अनवस्रावित = जिस से चावल के पकाते समय जो द्रव द्रव्य न निकालागया वह चरु अनवस्रावित कहते हैं।

गृह्यपात्र (1. गृह्य स्रुव) (2. गृह्यदर्वी)

गृह्यस्रुक्, गृह्यदर्वी

विवाह के समय सम्पादित अग्नि को गृह्याग्नि, स्मार्ताग्नि, औपासनाग्नि इत्यादि नामों से व्यवहार करते हैं। अग्न्याधान (अग्नि का ग्रहण करना) नामक कर्म में इस गृह्याग्नि से चरूपाक के लिये (चरू = अनवस्रावित अन्तरूष्मपक ओदन) अर्थभाग अग्नि लेते हैं, यह ब्राह्मौदनिक कहा जाता है। गृह्याग्नि में स्थालीपाक करने के लिये उपयुक्त पात्र स्थाली या स्थालीपाकपात्र कहते हैं।
यह तो पीतल से बनाया छोटा सा पात्र है। उत्तान हस्त से (= हाथ आगे बढाकर) जलसेचन करना प्रोक्षण है।
उसके लिये उपयुज्यमान पात्र प्रोक्षणपात्र कहते हैं। जल से भरा हुआ पात्र पूर्णपात्र हैं। घृतधारण के लिये उपयुक्त पात्र आज्यस्थाली कहते हैं। इस तरह प्रोक्षणपात्र, पूर्णपात्र, आज्यस्थाली आदि कहने पर भी उनका इस्तेमाल नहीं हो रहा है। केवल स्रुक् और स्रुव नियमित रूप से उपयोग करते हैं। उनका प्रमाण प्रादेश है। प्रदस्यते परिम…

जुहू

जुहूः

यह तो होमसाधनभूत पात्र विशेष है। "यस्य पर्णमयी जुहुर्भवति न पापं श्लोकं शृणोति"[11] "पर्णमयी जुहूः"[12] "पलाशेन अवत्तहविर्धारणद्वारा जुह्वपूर्वं भावयेत्"[13]। ऐसे मीमांसक श्रुति का अर्थ कहते हैं।

[11] तै.सं. 3-5-7
[12] आप. श्रौ.सू. 1-15-10

हूयते अनया इति जुहूः ऐसा विग्रहवाक्य है। सब होम या याग इससे करते हैं इसलिये इसे जुहू कहते हैं। परिभाषासूत्र में "जुहोतीति चोद्यमाने सर्पिराज्यं प्रतीयात्, अन कर्तारं, जुहूं पात्रं, व्यापृतायाम् स्रुवेण आहवनीये प्रदानम्"[14] ऐसा है। जुहोतिशब्द से विधीयमान होम करते समय :- द्रव्य = द्रवरूय ए अध्वर्यु कर्ता, जुहू होमसाधनपात्र, यदि जुहू द्रव्यान्तर से पूर्ण हो तो स्रुच आहवनीयाग्नि में प्रक्षेप करना, विहित हैं। अतः विशेषरूप से होमसाधन पात्रका निर्देश नहीं होने पर जुहू से ही होम करना चाहिए। पलाश से जुहू का निर्माण करना है। "यजमान देवत्या वै जुहूः" "जुह्वां गृह्णन् भूयो गृह्णाति"[15]। घृत ग्रहण करते समय सुव से पूर्ण रूप से ग्रहण करना है। आज्यग्रहणकाल में जुहूपात्र में चार बार या पाँच बार घृत का ग्रहण करना है। सामान्यतः सब लोगों को चार बार। जामदग्न्यादि प्रवरवाले पञ्चावत्त कहलाते हैं। उनको पाँच बार। ऐसा व्यवस्थित विकल्प है। "शुक्रं त्वा शुक्रायामिति --- जुह्वांचतुः पञ्चकृत्वो वा प्रतिमन्त्रम्" आप.श्रौ. 2-7-8. चतुर्जुह्वां -7-4 ऐसा है। यज्जुह्वां गृह्णाति, प्रयाजेभ्यस्तत्" तै. ब्रा.। इस पात्र के आज्य से प्रधाजों को करना है। प्रधान याग के पहले करनेवाले याग को प्रयाज कहते हैं। इष्टि के पाँच प्रयाजों में तीन इससे ही करते हैं। याज्ञिक जुहू को समझने के लिये इस पर '-' चिह्न लगाते हैं। पशुबन्धादि यागों में जुहू के सारे घृत को प्रयाजों में ही इस्तेमाल करते हैं। अन्त्येष्टि में यजमान के दक्षिणहस्त में उत्तराभिमुख अग्र हो ऐसा रखते हैं। यह पहली स्रुक् है।

यूप: यज्ञीय स्तम्भ, जिसमें बध्य पशु बाँधा जाता है ऋग्वेद 5.2.7 यह पलाश, खदिर, बिल्व अथवा रौहितक के काष्ठों में किससे निर्मित हो यह यजमान की फलकामना पर निर्भर करता है, आपस्तम्भ श्रौतसूत्र 7.118 के अनुसार यूप का आकार यज्ञ के प्रकार के आधार पर एक से तैतीरा अरत्नियों तक हो सकता है। सामान्यतः पशु-याग के लिए 3 से 4 अरत्नि, भारद्वाज श्रौतसूत्र 72.7. सोमयाग के लिए 5 से 15 कात्यायन श्रौतसूत्र 8.1.31 के अनुसार आपस्तम्भ श्रौत्रसूत्र के अनुसार इतना ऊँचा कि जितना हाथ को उताकर अध्यक्ष न उठाकर खड़े अथवा रथ पर खड़े यजमान की ऊँचाई हो। यह अष्टकोणीय अग्र भाग में शुण्डाकार होता है और नीचे बिना रवा हुआ 1/5 भाग को जिसे 'ऊपर कहते हैं, गड्ढे के भीतर डाल देते हैं।
2. चमसपात्र- ये यज्ञपात्र विकंकत काष्ठ के बने होते हैं। इनका आकार और गान प्रणीता सदृश है। इनमें सोमरस रखकर आहुति दी जाती है। ये संख्या में दस होते हैं। प्रत्येक को एक दूसरे से अलग जानने के लिए इसके दण्ड में अलग-अलग चिह्न अथवा अलग-अलग आकार बने होते हैं।

विर्ककतमयाः श्लक्ष्णास्त्वग्विलाश्चमसाः स्मृताः।
चतुरंगुलखाताश्च तेषां दण्डेषु लक्षणम्॥
होतुर्मण्डल एव स्याद् ब्रह्मश्चतुरस्रकः।
उद्गातॄणां च त्र्यस्त्रिः स्याद्याजमानः पृथुः स्मृतः॥
प्रशास्तुरवतष्टः स्यादुत्तष्टो ब्रह्मशंसिनः।
पोतुरग्रे विशाखी स्यान्नेष्टुः स्याद्विगृहीतकः॥
अच्छावाकस्य रास्ना च आग्नीध्रस्य मयूषकः॥
सव्यवकः सदस्यस्य एतच्चमसलक्षणम्॥
दण्डानामेष आकारः चमसाश्चतुरस्रगाः।[16]

मण्डलहोतृचमस: होता नामक ऋत्विज जो चमस प्रयोग करता है, उसे होतृचमस कहते है। पहचान के लिए इसके दण्ड पर मण्डलाकार चिह्न होता है।

ब्रह्मचमस: 'ब्रह्मा नामक ऋत्विज के लिए जिस चम्मस का प्रयोग होता है, उसे ब्रह्मवमरा कहते हैं। पहचान के लिए इसके दण्ड का आकार चतुरस्र होता है।

उद्गातृचमस: उद्गाता ऋत्विज को सोमरस प्रदान करने के लिए जो चमन होता है, उसे उद्गातृ चमस कहते है। इस चमस के दण्ड का अग्रभाग त्रिकोणाकार होता है।

यजमानचमस: यज्ञ में यजमान के लिए जो चमस होता है, उसे यजमान चमस कहते हैं। इसका दण्ड चतुरस्र होता है लेकिन ब्राह्मचमस से इसका दण्ड कुछ बड़ा होता है।

प्रशास्तृचमस: प्रशास्ता नामक ऋत्विज के लिए जो चमस प्रयुक्त होता है, उसे प्रशास्तृचमस कहते हैं। इसका दण्ड आगे की ओर झुका रहता है।

ब्राह्मणाच्छंसिन् चमस: ब्राहाणाट्छंसिन् नामक ऋत्विज का चमस है। इसका दण्ड आगे की ओर किंचित् ऊपर की ओर उतान होता है। यद्यपि शाखा भेद से इसमें परिवर्तन भी प्राप्त होता है. अर्थात नीचे की ओर भी झुकाव हो सकता है।

पौतृचमस: पोतृ नामक ऋत्विक् के द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाला चमस है। इसके दण्ड़ का अग्र भाग द्विमुखी होता है।

नेष्टृचमस: इस चमस का प्रयोग नेष्टा नामक ऋत्विज करता है। इसके दण्ड का अग्रभाग दाहिनी ओर मुड़ा होता है।

उत्तरारणि: यह यज्ञपात्र शमीगर्भ अश्वत्थवृक्ष के काष्ठ से अग्नि की उत्पत्ति के निमित्त बनाई जाती है। इसी काष्ठ में से एक आठ अंगुल लम्बा टुकड़ा कील के आकार जैसा काटकर मन्थ बनाया जाता है।

"उत्तरारणेरीशानदिक्संस्थ-मष्टांगुलं प्रमन्थं छित्वा,
आश्वत्थीन्तु शमीगभीमरणीं कुर्वीत सोत्तराम्।
उरोदीर्घा रत्निदीर्घा चतुर्विंशाङ्गुलां तथा॥
चतुरङ्गुलोच्छ्रितां कुर्यात् पृथुत्वेन षडंगुलाम्।
अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याच्चात्रं स्याद्वादशाङ्गुलम्॥
ओबिली द्वादशैव स्यादेतन्मन्थनयन्त्रकम्।
मूलादष्टाङ्गुलमुत्सृज्य त्रीणि त्रीणि च पार्श्वयोः॥
मूलादष्टाङ्गुलं त्यक्त्वा अग्रात्तु द्वादशाङ्गुलम्।
देवयोनिः स विज्ञेयस्तत्र मध्यो हुताशनः॥[17]

अधरारणि: जिस काष्ठ पर मन्थ रखकर अग्नि मन्थन किया जाता है, उसे अधरारणि कहते हैं। चौबीस अंगुल लम्बी, छः अंगुल चौड़ी और चार अंगुल ऊँची बनाई जाती है। "अधरारणिमुत्तराग्रां निधाय। दे.या.प. पृष्ठ 104

नेत्र: अग्निमन्थन के लिए मन्ध में लपेटे जानेवाली डोरी नेत्र है। यह चार हाथ लम्बी डोरी होती है। "नेत्रं स्याद् व्याममात्रकम्[18]।

मन्थ: यह यज्ञपात्र कील जैसा आठ अंगुल लम्बा उत्तरारणि में से टुकड़ा निकालकर बनाया जाता है। इसका नुकीला भाग अधरारणि पर रखकर ऊपर से ओविली से दबाकर मध्य में पहले से लपेटी हुई रस्सी को दोनों हाथों से खींचकर अग्नि मन्थन किया जाता है। अग्नि का मन्थन किये जाने के कारण ही इसका नाम मन्थ पड़ा है। "एकशलाकया मन्थः।[19]

ओबिली: अग्निमन्थन करते समय मन्थ को जिस काष्ठ से दबाते हैं, उसे ओविली कहते हैं। यह बारह अंगुल लम्बी होती है। "ओविली द्वादशांगुल्या।[20]

[13] मीमांसा - 24-1-23
[14] आप. श्रौ.1.15. 27
[15] तै. ब्रा. – 1.5.2
[16] देवयाशिक पद्धत्ति

[17] गृह्यसंग्रह- १/७८-८१
[18] कात्यायन, यज्ञपार्श्वपरिशिष्ट, पृ.सं.-104
[19] का.श्री.सू.- 5/8/18
[20] कात्यायन, यज्ञपार्श्वपरिशिष्ट, श्लोक संख्या - 4

अग्निहोत्रहवणी: "अग्नौ हूयते यया साऽग्निहोत्रहवणी"विकङ्कत काष्ठ की बाहुमात्र लम्बी, आगे की ओर चार अंगुल गर्तवाली, हंसमुखी होती है। इससे अग्निहोत्र किया जाता है। "अग्निहोत्रहवणी हंसमुखी।[21]

स्पय: यह यज्ञपात्र खदिर काष्ठ का बनता है। यह एक हाथ लम्बा, दोनों ओर धारवाला तथा आगे से नुकीला होता है। यज्ञ के समय आग्नीध्र नामक ऋत्विज इसे अपने हाथ में लिए रहता है। वज्र इसका नामान्तर है।"स्पयश्च।[22]

धृष्टि: यह पात्र कपालोपधान से पूर्व अग्नि को हटाने में उपयोगी है। यह हाथ के पंजे के आकार की, एक हाथ लम्बी होती है। उपवेष इसका नामान्तर है।"धृष्टिरसीत्युपवेषमादाय।[23]

उपवेष: यह धृष्टि का ही नामान्तर है।

उलूखल: हविर्द्रव्य को कूटने में प्रयुक्त होने वाला यह यज्ञपात्र पलाश काष्ठ का बना होता है। यह बारह अंगुल ऊँचा और मध्य में कुश होता है। "पालाशः स्यादुलूखलः[24]।

मुसल: मुस्यति खण्डयतीति मुसलम् यह यज्ञपात्र खदिर काष्ठ का बनता है। यह बारह अंगुल लम्बा और गोल आकार का होता है। यव, व्रीहि आदि हविर्द्रव्य का कण्डन इसी से होता है। "खादिरं मुसलं कार्यम्।, मुसलोलूखलेवार्थी स्वायते सुदृढे तथा।[25]"

उपयमनी: जुहू के आकार की और जुहू से बड़ी एक सुची को उपयमनी कहते हैं। "उपयमनीं महावीरम्"[26]

उपभृत्: उप समीपे नियत इति उपभृत्। यह सुची अश्वत्थ काष्ठ की बनती है। इसका आकार और माप जुहुह्वत् होता है। याग के समय अध्वर्यु इसे अपने साथ रखता है। जुहू का आज्य समाप्त होने पर शेष आहुति के लिए इसमें से जुहू में आज्य लेकर आहुति दी जाती है। "आश्वत्थ्युपभृत्"[27]

ध्रुवा: वेद्यामप्रचलिता तिष्ठतीति ध्रुवा। यह मान और आकार में जुहू सदृश सुची है। यह वेदि में रखी रहती है। याग के निमित्त इसमें से ही खुवा से आज्य लेकर जुहु में छोड़ते हैं और याग करते हैं। अभिधारणं ध्रुवायाः[28]।

रौहिणहवणी: रोहिण पुरोडाश का हवन जिस सुची से किया जाता है, उसे रौहिणहवणी कहते हैं। यह गर्तरहित, बाहुमात्र लम्बी, जुहूवत् आकार की सुची होती है। "रौहिणहवन्यादाय[29] ।

मयूख: दूहने के निमित्त अजा को बाँधने के लिए प्रयुक्त लकड़ी की खूँटी को मयूख कहते हैं। स्थूणा मयूखम्।[30]

शम्या: यह यज्ञपात्र वारण काष्ठ निर्मित, बारह अंगुल लम्बी तथा आगे से नुकीली होती है। यव एवं व्रीहि को पीसने के समय इसे शिला के नीचे रखते हैं। दृषद् एवं उपल के ऊपर इसके समाहनन द्वारा कुक्कुटवाणी उत्पन्न की जाती है, जिससे असुर नष्ट होते हैं। "शम्या प्रादेशमात्री[31] ।"

इडापात्री: यह यज्ञपात्र वारण काष्ठ निर्मित, एक अरत्नि लम्बी, छः अंगुल चौड़ी, बीच में गहरी और कृशमध्या होती है। अध्वर्यु पुरोडाश और चरु प्रभृति की आहुति के अनन्तर शेष हविर्द्रव्य (पुरोडाश) को इसमें रखकर होता को देता है, जिसे इडोप ह्वान के बाद ऋत्विज सहित यजमान भक्षण करते हैं। "इडापात्री. अरत्निलमात्र्यौ मध्यसंगृहीते"[32]।
स्रुव - स्रवति आज्यं यस्मात्। जिस पात्र से अग्नि पर आज्य की आहुति दी जाती है, उसे खुब कहते हैं। यह खैर की लकड़ी का अरत्निमात्र लम्बा बनता है। इसमें आज्य लेने के लिए आगे की ओर अंगुष्ठपर्वमात्र का गर्त होता है।"खादिरः स्रुवः"[33]

इध्म: पलाश की लकड़ी को काटकर इध्म बनायी जाती है। ये एक हाथ लम्बी होती है। प्रक्तियाग में इनकी संख्या पन्द्रह एवं विक्तियाग में सत्रह या इक्कीस होती है। "पालाशोऽष्टादशसंख्यारत्निमात्रकाष्ठकः[34]।

बर्हि: अग्निशाला की वेदि में बिछाये जाने वाले दर्भसमूह को बर्हि कहते हैं।

तृणसंज्ञास्तु ये दर्भा एकपत्राः स्मृतास्तु ते ।
ते बर्हिः संज्ञकादर्भारत्निमात्राधिकाश्च ये[35]।।

पुरोडाशपात्री: यह एक वारणकाष्ठ का प्रादेशमात्र चतुरस्र पात्र है। इन्हीं पर पुरोडाश रखे जाते हैं। एक कपाल पर श्रुत पुरोडाश को रखने के लिए यही पात्री सबिला होती है।

पुरोडाशाख्यपात्री च प्रादेशाश्चतुरनिकाः।
मध्ये तु दर्पणाकारा मूले दण्डसमन्विताः ।।
यज्ञपाश्र्व परिशिष्ट श्लोक 119-120

प्राशित्रहरण: यह यज्ञपात्र वारणकाष्ठ से बनता है। इस पर प्राशित्रसंज्ञक हवि को रखकर ब्रह्मा को दिया जाता है। इसकी लम्बाई पाँच अंगुल और चौड़ाई चार अंगुल होती है।पीछे की ओर दो अंगुल का दण्डा होता है। ये दो होते हैं। एक पर पुरोडाश रखा जाता है और दूसरा ऊपर से ढँका जाता है।

प्राशित्रहरणं कुर्यात् पञ्चाङ्गुलप्रमाणकम्।
आदर्शाकारवन्मध्ये) ।। यज्ञपार्श्व परि. श्लोक 122

षडवत्त: डोपह्वान हो चुकने पर अध्वर्यु द्वारा आग्नीध्र को षडवत्त भाग दिया जाता है। वह भाग जिस पात्र पर रखा जाता है, उसे भी षडवत्त कहते हैं। उपर्युक्त पात्र पर दो बार आज्य, दो बार पुरोडाश का भाग और पुनः दो बार आज्य रखने के कारण इस पात्र का नाम घडवत्त यथार्थ है। "अग्नीधे षडवत्तम्[36]।

द्रोणकलश: यह विकङ्कतकाष्ठ का यज्ञपात्र है। इसकी लम्बाई अठारह अंगुल या एक हाथ की कही गई है, और चौड़ाई बारह अंगुल रहती है। मध्य में गर्तवाला और चारों ओर परिधियुक्त होता है। इसमें सोमरस छाना जाता है। "द्रोणकलश) कुर्यादरत्निमात्राणि ।"[37]

---

[21] कात्यायन, यज्ञपार्श्वपरिशिष्ट, पृष्ठ 6
[22] का. श्रौ.सू. 1/3/33
[23] का. श्रौ.सू.-2/4/25
[24] या.प. पृष्ठ - 6
[25] या.प. पृष्ठ - 6
[26] या.प. - पृष्ठ -26
[27] का.श्रौ.सू.- 1/3/36
[28] का.श्रौ.सू.-3/3/9
[29] या.प. पृष्ठ - 26
[30] का.श्रौ.सू.- 26/2/15
[31] या.प. पृष्ठ - 7
[32] या.प. पृष्ठ - 7
[33] का.श्रौ.सू.-1/3/3/4
[34] या.प. पृष्ठ - 4
[35] यज्ञपार्श्व परिशष्ट – श्लोक - 9
[36] का.श्रौ.सू. 3/4/16
[37] यज्ञपार्श्व परि - श्लोक - 118

होतृपीठ: जिस यज्ञकाष्ठनिर्मित पीठ पर बैठकर होता सामिधेनी ऋचा पढ़ता है, वह होतृपीठ है। यह एक अरत्नि लम्बा और प्रादेशमात्र चौड़ा होता है। आसनानि चारत्निमात्रदीर्घाणि प्रादेशमात्रविपुलानि।[38]

शूर्पम्: यह पात्र बाँस से बना होता है। यज्ञ के लिए जंगल से शकट पर लादकर धान या यव लाया जाता है। उसे कूटकर इसी शूर्प से पछोड़कर साफ किया जाता है। शूर्प वैणवमेव च[39] ।

कृष्णाजिन: कृष्णमृग के चर्म को कृष्णाजिन कहते हैं। धान कूटने के समय उलूखल के नीचे और अग्निमन्थन के समय अरणी के नीचे इसे बिछाते हैं।
"कृष्णाजिनमादत्ते। श.प.ब्रा.- 1/1/1/4

दृषत्: दीर्यते असौ दृषत्। पुरोडाश बनाने के लिए यव या व्रीहि का पेषण संस्कार इस पर होता है। यह एक शिला है। यह एक रत्नि लम्बी और चौड़ी चतुरस्र होती है। दृषद्रत्निप्रमाणेन । यज्ञपार्श्व परि. श्लोक 24

उपला: पुरोडाश बनाने के लिए यव या ब्रीहि को पीसने की लोढ़िया को उपल कहते हैं। "तथोपला. ।[40]

श्रुतावदान: यह प्रादेशमात्र का एक यज्ञपात्र है। पुरोडाश में से अवदान लेने के निमित्त इसका उपयोग होता है। इसका आकार खुरपी जैसा कहा है।"प्रादेशमात्रं तीक्ष्णाङ्गुष्ठपर्वमात्रपृथुमुखम्"[41]।

आज्यस्थाली: देवता के निमित्त हवन अथवा याग करने का आज्य जिस पात्र में रखते हैं, उसे आज्यस्थाली कहते हैं।

> आज्यस्थाली च कर्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा।
> माहेयी वापि कर्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च ॥[42]

अन्तर्धानकट: यह बारह अंगुल लम्बा, छः अंगुल चौड़ा और अर्धचन्द्राकार एक यज्ञपात्र है। जिस समय अध्वर्यु गार्हपत्य के अग्नि पर पत्नीसंयाज करता है, उस समय देवपत्नियों का आवाहन होता है। लज्जा स्त्रियों का सहज धर्म है। साथ ही स्त्रियाँ पुरुष के सम्मुख भोजन करना पसन्द नहीं करतीं। सम्भवतः इसीलिए इस पात्र को बीच में रखकर उपर्युक्त कार्य का निर्वाह किया जाता है। अन्तर्धानकटस्त्वर्धचन्द्राकारो द्वादशांगुलः ।[43]

शकट: याग में प्रयुज्यमान यव, व्रीहि आदि हविपदार्थों को जंगल से काटकर जिस पर लादकर यज्ञभूमि तक लाया जाता है, वह शकट कहलाता है। इसका उपयोग इष्टि तथा सोमयाग में आवश्यक रूप से होता है। "श्रपणस्य पश्चादनस्तिष्ठत्समंगम्"[44] ।

श्रौत-यज्ञ-पात्रों का वैज्ञानिक महत्त्व: श्रौत यज्ञों में वर्णित पात्र केवल धार्मिक अनुष्ठान की वस्तुएँ नहीं हैं; इनके आकार-प्रकार, धातु, निर्माण-विधि तथा उपयोग की पद्धति के पीछे गहन वैज्ञानिक, पर्यावरणीय तथा मनोवैज्ञानिक आधार निहित है।
अरणि/अग्नि-सम्भार (Fire-generating apparatus) वैज्ञानिक महत्त्व: यह घर्षण विधि (Friction-based ignition) से अग्नि उत्पन्न करने का उत्तम मॉडल है। यह घर्षण-ऊष्मा, दहन, ऑक्सीजन की आवश्यकता तथा ऊर्जा-परिवर्तन (Mechanical ⟶ Thermal ⟶ Chemical Energy) का प्रत्यक्ष विज्ञान-प्रयोग है।
रासायनिक अग्नि-उत्पादन के स्थान पर जैविक-पर्यावरणीय पद्धति का उपयोग—किसी भी प्रदूषक गैस का निष्कासन नहीं।
हवनी-कुण्ड (Fire Altar) - इसका ज्यामितीय आकार (त्रिकोण, पंचकोण, चतुष्कोण आदि) ऊष्मा-वितरण का वैज्ञानिक मॉडल है।
यज्ञकुण्ड का डिज़ाइन ऐसा होता है कि वर्तुलाकार वायु-बहाव (Air convection) उत्पन्न हो और धुआँ ऊपर उठे।यह प्रभाव माइक्रो-हवा-शोधन (Micro Air Purification System) जैसा है।
दहन की दक्षता (Efficient combustion) अधिक होने से अधजला धुआँ न्यूनतम बनता है। हवनी-स्रुव तथा स्रुच (Offering ladles) यह मुख्यतः लकड़ी (पालीश नहीं) या धातु से बनते हैं।
इनकी लम्बाई व चौड़ाई ऐसी होती है कि हवन-सामग्री अग्नि में सीधे न गिरकर नियंत्रित रूप से जले, जिससे सतत व नियंत्रित दहन (Steady State Combustion) होता है।
लकड़ी के स्रुच विद्युत-रोधक (Electrical insulation) होते हैं—धातु के पात्र गरम होकर चालन (conduction) बढ़ाते हैं, जबकि लकड़ी ताप चालन नहीं करती।
अंजलि-पात्र/द्रोण-कलश (Water vessels) -तांबे/पीतल/मृन्मय पात्रों का प्रयोग।
तांबा जल को रोगाणुनाशक (Antimicrobial) बनाता है — आधुनिक विज्ञान इसे "Oligodynamic action" कहता है। यह पात्र अलौह-धातु होने से जंग नहीं लगते और जल का pH संतुलित रखते हैं। यज्ञ में तांबे की ध्वनि व स्पर्श से आयन-उत्सर्जन (Cu^{2+} ions) होता है जो जल की शुद्धि में सहायक।
उखल-मुसल, शराव, पिष्टपात्र (Processing bowls) अनाज या औषधि पिषण के लिये मृदु और स्वच्छ सामग्री से बने पात्र। अनाज या औषधि पीसते समय ताप न बढ़े और औषधीय गुण नष्ट न हों। मृत्तिका और लकड़ी के पात्र रासायनिक अभिक्रिया नहीं करते—Non-reactive laboratory ware।
धूप-ध्वज/धूप-धुरि तथा आहुति-पात्र - सुगंधित धूप, हवन-सामग्री जलाने हेतु विशिष्ट पात्र।
यज्ञीय धूप से निकलने वाले वाष्प (volatile oils) में एंटी-बैक्टीरियल, एंटी-फंगल, एंटी-एलर्जिक गुण होते हैं।
आधुनिक शोधों के अनुसार गूगल, लोध्र, शर्करा, सरसों आदि का धुआँ वायु में उपस्थित रोगाणुओं को 94% तक नष्ट करता है। यह एक प्रकार का natural fumigation chamber बनाता है।
समिधा (विशिष्ट प्रकार की लकड़ियाँ) -पलाश, पीपल, आम, देवदारु आदि की समिधाएँ।
इन समिधाओं में anti-microbial aromatic resins होते हैं। इनके दहन से नाइट्रिक ऑक्साइड, फाइटोनसाइड्स और आयन-समृद्ध धूम्र निकलता है, जो वातावरण को शुद्ध करता है। आधुनिक "Aromatherapy + Air ionization" सिद्धान्त से मेल खाता है।
वल्कल/वसन (Barriers, gloves-like bark pieces) - यज्ञिक कामों में वल्कल का उपयोग।
यह "Heat protection gear" जैसा कार्य करता है। रसायन-रोधक और ताप-रोधक (Insulator) होने से सुरक्षा बढ़ती है।
काष्ठ-पात्र, ताम्र-पात्र, मृद्भाण्ड - श्रौत यज्ञ में धातु और मिट्टी के पात्रों का चयन रासायनिक दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक हैं। मृत्तिका ताप सहायक (Thermal stabilizer) है। ताम्र आयन सूक्ष्मजीवों का नाश करते हैं। लकड़ी सर्वथा रासायनिक अभिक्रियाहीन (Chemically inert) है।
सारांश रूप में कहा जा सकता है कि श्रौत यज्ञ के पात्रों का वैज्ञानिक महत्त्व है उनसे अधोलिखित लाभ होते हैं - ये विविध पात्र, ऊष्मागतिकी (Thermodynamics), दहन-विज्ञान (Combustion science), दूषित-वायु शोधन (Air purification), औषध-रस-विज्ञान (Phytochemistry), रोगाणुनाशन (Microbial control), मानसिक-शांति एवं न्यूरो-प्रभाव (Psychophysiology), पर्यावरण संरक्षण (Eco-

[38] या.प. पू. - 7
[39] या.प.- पृष्ठ - 6
[40] यज्ञपार्श्व परि.श्लोक 124
[41] या.प. पृष्ठ - 7
[42] कात्यायनस्मृति- 15/10
[43] या.प. पृष्ठ 7
[44] का.श्रौ.सू. 2/3/12

friendly design) इत्यादि वैज्ञानिक महत्त्वों से परिपूर्ण ये श्रौत याग के यज्ञ पात्र तथा समिधाएं हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कात्यायन श्रौतसूत्रम् - सम्पा. डॉ. जमुना पाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
2. आश्वलायनश्रौतसूत्रम्- आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलिः, पुणे
3. बौधायनश्रौतसूत्रम् - Dr. W Caland, कलकत्ता
4. आपस्तम्बश्रौतसूत्रम् - मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर
5. द्राह्यायणश्रौतसूत्रम् - J. N. Reuter, लन्दन
6. आधानपद्धतिः- श्री वामनशास्त्री, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पुणे
7. कात्यायनयज्ञपद्धतिविमर्श डॉ. मनोहरलाल द्विवेदी, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली
8. यज्ञतत्त्वप्रकाश- वेदविशारद अ. चिन्नस्वामी शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली
9. यज्ञसरस्वती - पं. मधुसूदन ओझा, जयपुर
10. श्रौतयज्ञ परिचय - पं. वेणीराम शर्मा गौड़, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
11. श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय पं. युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत
12. श्रौतयज्ञ मीमांसा -- पं. युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत
13. श्रौतकोशः - वैदिक संशोधन मण्डल, पुणे
14. यज्ञपात्रपरिचयः - प्रो. श्रीपाद सत्यनारायणमूर्ति, राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, तिरुपतिः